चतुर्थ अध्याय

वर्ण-व्यवस्था वर्णन

आश्रम-व्यवस्था के वर्णन के पश्चात् प्रस्तुत अध्याय में आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्राप्त उल्लेख के आधार पर वर्णन व्यवस्था का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। भारतीय संस्कृति धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था के अनुसार वर्ण–व्यवस्था का निर्माण हुआ। वृ– वृञ् वरणे धातु से घञ् प्रत्यय करने पर वर्ण शब्द की निष्पत्ति होती हैं शब्दार्थ धर्मज्ञों ने इसके कई अर्थ व व्याख्यान प्रस्तुत किए हैं–

''वर्णव्रियते इति वृ+'कृ·वृजृसिद्रूपन्यनिस्वपिभ्योनित्'' उणादि सूत्र से नित् प्रत्यय इति नः। जातिः सा च ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च। यदा भगवान् पुरुषरूपेण सृष्टिं कृतवान् तदास्य शरीरात् चत्वारो वर्णा उत्पन्नाः।[1] श्री वामन शिवराम आप्टे के अनुसार वर्ण्+घञ् ''वर्णानामानुपूर्व्येण'' वार्तिक से भी इसकी उत्पत्ति मानी है जिसका अर्थ रंग रूप, सौन्दर्य, रोगन, मनुष्य श्रेणी, जन जाति या कबीला जाति (मुख्य रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र)[2]।

चातुर्वर्ण्यकल्पना धर्म एवं उसके कर्त्तव्य

मानव समूह की आवश्यकता को देखते हुए उसके चार विभाजन हुए। शिक्षा के लिए ब्राह्मण, राष्ट्र एवं प्रजा की रक्षा के लिए बाहुबलधारी क्षत्रिय, अन्न, दूध ,खान–पान की समस्याओं को सुलझाना, व्यापार, कारीगरी, वस्तुओं की अदला–बदली आदि के लिए वैश्य

---

1 शब्द कल्पद्रुमः पृ0 277 उणादि सूत्र 3/10

2 सं0 हिन्दी को0, पृ0 90/

इन सब की सेवा करने के लिए जैसे पानी भरना हरवाहे, लकड़ी ढोना, सफाई करना आदि के लिए शूद्र आदि की उत्पत्ति 'कर्म विभाग' से पूरी हुई।[1]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। वे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।[2] वर्ण–व्यवस्था पर अनेक धर्मज्ञों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। ये चारों ही वर्ण सामयाचारिक धर्म के अधिकारी हैं। इन आचारों से स्वर्ग और मोक्ष की उत्पत्ति होती है।[3]

सामयाचारिक की व्युत्पत्ति 'समयःमूलाआचारास्समयाचाराः तेषु भवाः सामयाचारिकाः। अर्थात् धर्मज्ञ लोगों की सहमति से प्रारम्भ किया गया दैनिक आचार।[4] गौतम सामयाचारिक को स्मृति विहित मानता है।[5]

इन सामयाचारिक नियमों का पालन करते हुए चारों वर्णों को अपने-अपने वर्ण धर्म के अनुसार कार्य करना ही धर्मसूत्रों का उपदेश है। वर्ण व्यवस्था का निर्धारण सर्वप्रथम विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद[6] में उल्लेख है। वहाँ विराट् पुरुष प्रजापति के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए ऐसा वर्णन मिलता है। यजुर्वेद[7] में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि नामोल्लेख प्राप्त है।

---

1 हिन्दू ध0 को0 पृ0 576

2 (क) चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः। आ0 ध0 सू0 1.1.1.4, श0 ब्रा0 5.5.4.9, 6.4.4.13

(ख) चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय विट् शूद्राः। बौ0 ध0 सू0 1.8.15.1

(ग) गौ0 ध0 स0 1.8.1

3 'अथातस्सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्यामः' ।। आ0 ध0 सू0 1.1.1.1

4 आ0 ध0 सू0 1.1.1.1पर की पाद टिप्पणी आ0 ध0 सू0 1.11.31.1

5 गौ0 ध0 सू0 1.8.11

6 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भयां शूद्रो अजायत्।। ऋग्वेद 10/90/12। यजुर्वेद 31/11,38/14

7 ब्रह्मराजन्याभ्यां ॐशूद्रायचार्याय च स्वाय चारणाय प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह
भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादोनमतु।। यजु0 26/2 शुक्ल यजु मा0 सं0 31/11

अथर्ववेद[1] में भी वर्णविभाजन सम्बन्धी वर्णन देखने को मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी वर्णन है कि प्रजापति ब्रह्म के लिए ब्राह्मण का आलम्भन करता है क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्म है इसलिए ब्रह्म को ब्रह्म से मिलाता है। क्षत्र के लिए राजन्य को क्योंकि राजन्य क्षत्र है। क्षत्र से क्षत्र को मिलाता है। मरुतों के लिए वैश्य को क्योंकि मरुत् वैश्य है।वैश्य को वैश्य से, तप के लिए शूद्र को क्योंकि शूद्र तप है।इस प्रकार तप से तप को मिलाता है।[2]

शतपथ[3] ब्राह्मण में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख है, चार वर्ण है 1. ब्राह्मण 2. क्षत्रिय 3. वैश्य 4. शूद्र।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऋक् यजुष् और साम से क्रमशः वैश्यः, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण की उत्पत्ति बतलाई गई है।[4]

महाभारत के अनुशासन पर्व में भी चारों वर्णों के लिए अपने–अपने जाति वर्ण के अनुसार कर्म करने का विधान दिया गया है।[5] गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है कि मैंने ही चारों वर्ण, गुण और कर्म के विभाग से बनाये हैं।[6]

---

1 प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यतः उत शूद्र उतायते। अथर्व 18/1/8/1

2 ब्रह्मणो ब्राह्मणमालभते.....।
....समर्ध्यन्ति सर्वकामैः।। माध्यन्दिनीये श0 ब्रा0 तृ0 का0 13.6.2.10

3 चत्वारो वै वर्णाः। ब्राह्मणो राजन्यो व्वैश्यः शूद्रो न हैतेषामेकश्च्चन भवति इत्यादि श0 ब्रा0 5.5. 4.9 .....परिगृह्णीतेऽनपक्रमिणौकुरुते श0 ब्रा0 6.4.4.13

4 ऋग्भ्यो जातं वैश्य यजुर्वेदः क्षत्रियस्य आहुयोनिं सामवेदो ब्रह्मणानाम्।। तै0 ब्रा0 3/12/9/2

5 स्वाध्यायो यजनं दानं इत्यादि, अनुप0 25/10
क्षत्रिस्य स्मृतो धर्मः – इत्यादि अनु0 प0 25/11
वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यां, मा0 अनु0 प0 25/12
शूद्रधर्मः परोनित्य शुश्रूषा मा0 अनु 0 25/13

6 चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्। भगव0 गी0 4/13

वर्ण व्यवस्था के विषय में डॉ0 राधाकृष्णन् के अनुसार मानव समाज विभिन्न प्रकार की श्रेणियों से बना है तथा वे सभी अपने लक्ष्य को सद्धि करने में लगे हैं – "Society is an organism of different grades, and human activities differ in kind and significance. But each of them is value, so long as it serves the common end. Every type has its own nature which should be followed. No one can be at the same time a perfect saint, a perfect artist and a perfect philosopher. Every definite type is limited by boundaries which deprive it of other possibilities."[1] अतः कोई भी एक मनुष्य एक ही साथ एक महान् सन्त, एक महान् कलाकार और पहुँचा हुआ दार्शनिक नहीं हो सकता। प्रत्येक जाति या भेद की अपनी सीमाएं है जो दूसरी संभावनाओं से अलग करती हैं।

समय के परिवर्तन के साथ वर्ण व्यवस्था ने जो अन्यायपूर्ण रूप ग्रहण किया वह आज भी समाज की सबसे बड़ी समस्या के रूप में प्रत्यक्ष है। विशेषकर समाज के एक वर्ग की स्थिति इतनी दयनीय दिखाई पड़ती है कि अनेक मानवों के लिए जन्म भी अभिशाप प्रतीत होता है।

धर्मसूत्रों के काल में वर्णव्यवस्था अपनी पूर्ण अवस्था पर पहुँच चुकी थी आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इस विषय पर विशेष रूप से वर्णन किया गया है, तथा चौथे सूत्र में चार वर्णों का उल्लेख किया गया है।[2] अगले सूत्रों में उनकी श्रेष्ठता के क्रम को जन्म के आधार पर पुष्ट किया गया है। छोटे–छोटे[3] कर्मों में वर्ण के आधार पर भिन्नता का उल्लेख है। यज्ञोपवीत का समय, अवस्था मेखला, वस्त्र, दण्ड, भिक्षाचरण की विधि सभी में वर्ण के आधार पर वर्णन किया गया है। गौतम ने प्रतिलोम वर्णों को धर्महीन माना है।[4]

---

1 हिन्दू व्यू आफ लाइफ पृ0 127

2 चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा' आ0 ध0 सू0 1.1.1.4, बौ0 ध0 सू0 1.8.15-1

3 आ0 ध0 सू0 1.1.1.5

4 प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः। गौ0 ध0 सू0 1.4.20

ब्राह्मण वर्ण धर्म एवं उसका कर्त्तव्य

विराट् पुरुष का मुख ब्राह्मण था।[1] सूत्रकार ने ब्राह्मण वर्ण को समाज का सबसे पूज्य ओर श्रेष्ठ अङ्ग कहा है। ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता का अनुमान तो इसी से किया जा सकता है कि दस वर्ष के ब्राह्मण बालक के समक्ष सौ वर्ष की आयु का क्षत्रिय पिता के सामने पुत्र की तरह होता है।[2] इस वर्ण के मनुष्य को वेदाध्ययन से सम्पन्न होना होता था। यदि वह वेदाध्ययन से सम्पन्न न हो तो उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। उसे बैठने का स्थान, जल, अन्न आदि देने का विधान कहा है।[3]

विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति उनकी सर्वश्रेष्ठता की ओर इंगित करती है। वैदिक साहित्य में वृक्षों, नक्षत्रों तथा पशुओं आदि में भी ब्राह्मणत्व का आरोप किया गया है। वृक्षों में पलाश, नक्षत्रों में रोहिणी[4] पशुओं में अज[5] तथा दिन और रात में दिन को ब्राह्मण कहा गया है।[6] ब्राह्मण–वृत्तियों के अनुसार अत्रि मुनि ने दस प्रकार के कहे हैं।[7] जैसे देव–ब्राह्मण, मुनि–ब्राह्मण, द्विज–ब्राह्मण, शूद्र–ब्राह्मण, क्षत्र–ब्रह्मण, वैश्य–ब्राह्मण, चाण्डाल–ब्राह्मण।

---

1 ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् ऋग्वेद10/90/12

दशवर्षश्च ब्राह्मणः शतवर्षश्च क्षत्रियः।

पितापुत्रौ स्म तौ विद्धि तयोस्तु ब्राह्मणः पिता।। आ0 ध0 सू0 1.4.14.22

2 ब्राह्मणायाऽनधीयानायासनमुदकमन्नमिति देयं न प्रत्युत्तिष्ठेत्। आ0 ध0 सू0 2.2.4.16

3 ब्रह्म वै पलाशः। श0 ब्रा0 5.3.5.13

4 यद् ब्राह्मण एव रोहिणी। तै0 ब्रा0 2.7.9.4

5 ब्रह्म वा अजः। श0 ब्रा0 6.4.4.15

6 ब्राह्मणो वा एतद्रूपं यदहः। श0 ब्रा0 13/1/5/4

7 याज्ञ स्मृ0 का समी0 अ0 पृ0 105

शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण के कर्त्तव्यों की चर्चा करते हुए उसके अधिकार इस प्रकार कहे हैं – 1. अर्चा 2. दान, 3. अजेयता 4. अवध्यता। उसके कर्त्तव्य हैं। 5. ब्राह्मण्य (वंश की पवित्रता) 6. प्रतिरूपचर्य (कर्त्तव्य पालन) 7. लोक पंक्ति (लोक को प्रबुध करना)।[1]

ब्राह्मण के धर्मसम्मत कर्म वेद-विद्या का अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना व दान देना, खेतों में अन्न के कणों को बीनना तथा धन सम्पत्ति को उत्तराधिकार के रूप में स्वीकार करना आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित है।[2]

गौतमधर्मसूत्रकार[3] ने भी ब्राह्मण के आरम्भ के षट्कर्म आपस्तम्ब की तरह ही स्वीकार किये हैं। बौधायन[4] ने ब्राह्मण को ब्रह्म की महिमा कहकर उसके षट्कर्म आपस्तम्ब और गौतम के अनुसार ही स्वीकार किये हैं।

मार्कण्डेयपुराण[5] के अनुसार ब्राह्मण के दान, अध्ययन और यज्ञ यह तीन कर्म ही धर्म विहित हैं। गौतम[6] ने इन्हें अनिवार्य कर्त्तव्य कहा है। आपस्तम्बधर्मसूत्र[7] में उपनयन, वेदाध्ययन और अग्नि का आधान आदि विधान शूद्र व दुष्ट कर्म करने वालों को छोड़ कर तीनों उच्च वर्णों के लिए किया गया है। इन वर्णों के कर्म इस लोक तथा परलोक में पुण्यफल देने वाले कहे हैं। ब्राह्मण को उपनयन का अधिकार आठवें[8] वर्ष में तथा वसन्त ऋतु में करने का विधान किया गया है परन्तु ब्रह्म शक्ति चाहने वाले को सात वर्ष में भी कहा है।

---

1 श0 ब्रा0 1.6.2.4

2स्वकर्मब्राह्मणस्याऽध्ययनमध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहं दायाद्यंसिलोञ्छः।आ0ध0सू0 2.5.10.5

3 द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानम् । गौ0 ध0 सू0 2.1.1,2

4 ब्रह्मवै स्वं महिमानं ब्राह्मणेषु– इत्यादि, बौ0 ध0 सू0 1.10.17.2

5 दानमध्ययनथज्ञो ब्राह्मणास्यत्रिधोदितः। मार्कण्डेय पु0 25/3,4

6 पूर्वेषु नियमस्तु। गौ0 ध0 सू0 2.1.3

7 अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपायनं..... इत्यादि

.....फलवन्ति च कर्माणि।। आ0 ध 0सू0 1.1.1.6

8 गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणं। आ0 ध0 सू0 1.1.1.20,21, गौ0 ध0 सू0 1.1.6, बौ0 ध0 सू0 1.2.3.8

ब्राह्मण की जातियों में श्रेष्ठता है इसी विषय में आपस्तम्ब धर्म सूत्र में वर्णन है कि आचार्य रूप मे ब्राह्मण को ही स्वीकार करना चाहिए ऐसा स्मृतियों में कहा गया है।[1] आत्मज्ञान से ही ब्राह्मण श्रेष्ठ माना जाता है।[2] ब्राह्मण स्वयं को संस्कृत करके आराम नहीं करता था अपितु अपने गुणों का दान आचार्य अथवा पुरोहित के रूप में करता था, वह आचार्य पद से अपने पुत्र को अध्ययन तथा याज्ञिक क्रियाओं में निपुण कराता था।[3]

इस प्रसङ्ग में उपनिषद् ग्रन्थों में आरूणि एवं श्वेतकेतु[4] तथा वरुण एवं भृगु का उदाहरण है।[5] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पुरोहित का विशेष महत्त्व वर्णित है।[6] पुरोहित के रूप में ब्राह्मण महायज्ञों को करता था। साधारण गृह्य यज्ञ उसके बिना भी हो सकते थे किन्तु महत्त्वपूर्ण क्रियाओं में उसका विशेष स्थान था। पुरोहित का स्थान साधारण धार्मिक कार्यो की अपेक्षा सामाजिक भी होता था।

महाभारत शान्तिपर्व में ब्राह्मण को 'मैत्र' कहा गया है क्योंकि उसका धर्म सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना है।[7] ब्राह्मण के लिए व्यापार कार्य विहित नहीं है। वह व्यापारिक कार्यो में भाग न लें। किन्तु विपत्ति का समय आने पर उन्हीं वस्तुओं का व्यापार कर सकता है जो शास्त्र विहित हैं। जो धर्म विरूद्ध हैं, उनका व्यापार न करें[8]। जैसे मनुष्य (दास-दासी,)रस (जैसे गुड़, नमक, दूध) रंग सुगन्धि (चन्दन आदि),अन्न, चमड़ा, गौ, लाख, जल, हरा (अर्थात् बिना पका),अन्न, सुरा की तरह के पदार्थ और पीपर, मरिच, अनाज,

---

1 आ0 ध0 सू0 2.2.4.25

2 ऋग्वेद 4/26/1

3 श0 ब्रा0 1.6.24

4 वृह0 उ0 6.1.1

5 श0 ब्रा0 11.6.1.1

6 आ0 ध0 सू 2.5.10.15–17, 2.5–11–1

7 मैत्रो ब्राह्मण उच्यते' महाभा0 शान्ति पर्व 17/8 का अन्तिम पाद।

8 आ0 ध0 सू0 1.7.20–10,11 पा0 सू0 2.3.57

मांस, हथियार ओर पुण्यफल आदि का विक्रय निषिद्ध है।[1] विशेषकर ब्राह्मण को तिल व चावल का क्रय विक्रय वर्जित है।[2] इन उपर्युक्त वस्तुओं में एक वस्तु का दूसरी के साथ विनिमय करना भी ब्राह्मण के लिए निषिद्ध है।[3] जिन वस्तुओं को खरीदने का विधान है यदि उन्हें खरीदा न गया हो तो उनका विक्रय किया जा सकता है।[4] स्वयं उत्पादित मूँज, बल्वज़ घास, मूल और फल का विक्रय करने का भी विधान है। अन्य प्रकार के तृणों और काठ जिनसे कांट–छांट कर कोई उपयोगी वस्तु न बनाई गई हो उनका विक्रय करने का भी विधान है, परन्तु ऐसे जीवन निर्वाह करने में ज्यादा अभिरुचि न रखे।[5]

आपस्तम्ब धर्मसूत्रकार ने विधान किया है कि उन सभी वस्तुओं को, जो किसी व्यक्ति की न हो, ब्राह्मण ग्रहण कर अपनी जीविका का निर्वाह कर सकता हैं।[6] किन्तु बौधायन धर्मसूत्रकार का उल्लेख है कि ऐसी वस्तुएं जिनका स्वामी ब्राह्मण न हो और उस अन्य वर्ण के स्वामी का पता न हो वह वस्तु राजा की होती है।[7] आपद् धर्म रूप में अन्य व्यवसायों से भी ब्राह्मण जीवन निर्वाह कर सकता था।

समावर्त्तन के बाद ब्राह्मण तीनों अन्य वर्णों के यहां भोजन न करें।[8] ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त भोजन ही ग्रहण करे, किसी विशेष कारण से ही उसके भोजन को अस्वीकार करें। जब ब्राह्मण प्रायश्चित्त न करके कोई ऐसा अन्य कर्म करे जो प्रायश्चित्त नहीं है, तो उस ब्राह्मण द्वारा दिया गया भोजन ग्रहण न करे।[9] किन्तु उसके प्रायश्चित्त का तप कर लेने पर

---

1 आ० ध० सू० 1.7.20.12, मनु स्मृ० 10/86,89, 10/90, गौ ध० सू० 1.7.9, 12,14, 15

2 आ० ध० सू० 1.7.20-13

3 आ० ध० सू० 1.7.20.14

4 आ० ध० सू० 1.7.20-16

5 आ० ध० सू० 1.7.21-1,2,3

6 आ० ध० सू० 2.5.10.6, गौ० ध० सू० 2.1.40.44

7 बौ० ध० सू० 1.10.18.16

8 आ० ध० सू० 1.5.18.9

9 आ० ध० सू० 1.5.18.10,11

उसके घर का भोजन किया जा सकता है।[1] परन्तु इसी सन्दर्भ मे हरदत्त ने 'चरितनिर्वेषस्य' के चरित की ओर निर्देश करते हुए यह स्पष्ट किया है कि प्रायश्चित्त के काल में भी उसका अन्न ग्रहण न करें[2] जो विद्वान् ब्राह्मण सबके भोजन का परित्याग करता है अर्थात् न किसी को भोजन कराता है और न किसी के यहाँ भोजन करता है अथवा जिस किसी का अन्न ग्रहण करता है उस व्यक्ति द्वारा दिया गया भोजन अभोज्य होता है। स्वाध्याय न करने वाले ब्राह्मण का अथवा जिसकी केवल शूद्रा पत्नी जीवित हो उसका अन्न अभोज्य होता है वह चाहे विद्वान् क्यों न हो।[3] ब्राह्मण को शस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। उसे किसी भी प्रकार शस्त्र के प्रयोग से दूर रह कर परीक्षा के लिए भी हाथ में अस्त्र–शस्त्र ग्रहण न करने का विधान है।[4] ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि यदि प्राण संकट में पड़ जाए तो उस स्थिति में ब्राह्मण शस्त्र धारण कर सकता है।[5]

मनु ने धर्म के मार्ग के रुक जाने पर, आश्रम वालों का वर्ण विप्लव होने पर, दक्षिणा के हरने व गौ के हरने पर, युद्ध में स्त्रियों तथा ब्राह्मण की रक्षा के लिए द्विजातियों को शस्त्र धारण करने का विधान बतलाया है।[6] ब्राह्मण को पूजनीय माना गया है तथा कहा गया है कि अपने चरण से ब्राह्मण का स्पर्श न करे।[7] ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना गया है तथा उसे क्षत्रिय और वैश्य के आने पर उठकर सम्मान प्रदर्शित नहीं करना चाहिए।[8]

आपस्तम्ब में मार्ग विषय में कहा गया है कि यदि मार्ग पर ब्राह्मण आ रहा हो तो राजा को ब्राह्मण के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए। यदि ब्राह्मण न आता हो तो वह मार्ग राजा

---

1 आ0 ध0 सू0, 1.5.18.12

2 आ0 ध0 सू0, 1.5.18.12 पर की टिप्पणी

3 आ0 ध0 सू0, 1.5.18.33

4 परीक्षार्थोऽपि ब्राह्मण आयुधं नाऽऽदीत' आ0 ध0 सू0 1.10..39.6

5 गौ0 ध0 सू0 1.7.25

6 मनु स्मृ0 8/348–349

7 आ0 ध0 सू0 1.11.31.6

8 आ0 ध0 सू0 2.2.4.18

के लिए होता है, दूसरे लोगों के लिए मार्ग से किनारे से दूर हटने का विधान है। अतः मार्ग पर चलने के लिए भी ब्राह्मण को विशेष महत्त्व दिया है।[1]

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने कहा है कि ब्राह्मण को नाच–गाना नहीं करना चाहिए। उसे 'आग्लागृध' नहीं कहलाना चाहिए।[2] यदि नियम का अतिक्रमण करने वाले ब्राह्मण हो तो राजा उन्हें दण्डित न करके पुरोहित के पास भेजे जो उन्हें धर्म का उपदेश करे व उन्हें प्रायश्चित्त का विधान बतलाएं। यदि वे अतिक्रमण वाले फिर भी मार्ग पर न आएं तो उन्हें उपवास आदि नियमों से पीड़ित करे, वध न करे, न ही दास का कार्य करायें।[3] राजा द्वारा ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड का विधान नहीं था, वह छः प्रकार के दण्डों से मुक्त था यथा हथकड़ी बेड़ी से बांधना वर्जित था, उसे धन–दण्ड नहीं दिया जा सकता था, उसे ग्राम या देश से निकाला नहीं जा सकता था, उसकी निन्दा नहीं होनी चाहिए, उसका त्याग नहीं किया जाना चाहिए।[4]

आपस्तम्बधर्मसूत्र में ब्राह्मण द्वारा ग्रहण किए गए स्थान की श्रेष्ठता विषय में उल्लेख है कि जिस स्थान को ब्रह्मण हाथ से भी छूता है उस स्थान पर जल छिड़के बिना न बैठे।[5] ब्राह्मण और अग्नि को इतना श्रेष्ठ माना है कि उनके बीच से जाना भी वर्जित है किन्तु ब्राह्मण की अनुमति लेकर जाया जा सकता है।[6] आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख किया गया है कि विद्वान् श्रोत्रिय ब्राह्मण कर से मुक्त होता है।[7] गौतमधर्मसूत्र मे कहा गया है कि कर मुक्त ब्राह्मणों का राजा पालन करे।[8]

---

1 आ0 ध0 सू0 2.5.11,5,6

2 तस्माद् ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येतमाग्लागृधः' । वै0 सा0 का इति0 तृ0 सं0, पृ0 245

3 आ0 ध0 सू0 2.5.10.15.16.17

4 अवध्यश्चाबन्ध्यश्चादण्ड्यश्चबहिष्कार्यश्च अपरिवाद्यश्चापरिहार्यश्च । गौ0 ध0 सू0 1.8.13

5 'पाणि समूढं ब्राह्मणस्य नाऽप्रोक्षितमभितिष्ठेत्', आ0 ध0 सू0 2.5.12.5

6 आ0 ध0 सू0 2.5.12.6.7.8

7 अकरः श्रोत्रियः आ0 ध0 सू0 2.10.26 • 10

8 अकराश्च' गौ0 धू0 सू0 2.1.11

राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण क्षत्रिय को कर देता था, किन्तु इससे शतपथ में वर्णित ब्राह्मण की श्रेष्ठता न्यून नहीं होती थी।[1] आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख है कि ब्राह्मण को ऐसे स्थानों अर्थात् ग्राम आदि में रहना चाहिए जहाँ ईंधन तथा जल प्रचुर मात्रा में हो, जिससे वह अपने को शुद्ध करने का कार्य स्वेच्छा से कर सकता है।[2]

इस प्रकार से स्पष्ट है कि ब्राह्मण का समाज में एक विशेष स्थान था। ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए सतत् संलग्न रहता था। उसका जीवन तप से युक्त होता था।

क्षत्रिय वर्ण धर्म एवं उसके कर्त्तव्य

वर्ण–व्यवस्था क्रम में ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय का स्थान है। क्षत्रिय की उत्पत्ति विराट् पुरुष की बाहुओं से हुई है।[3] यह वर्ण भी सामयाचारिक धर्म का अधिकारी था।[4] इस वर्ण की श्रेष्ठता ब्राह्मण वर्ण से द्वितीय स्थान पर जन्म से ही मानी गई है।[5] इस वर्ण के लिए उपनयन वेदाध्ययन अग्नि का आधानविहित है।[6]

शतपथ ब्राह्मण में क्षत्रिय के विषय में वर्णन है कि क्षत्रियों में क्षत्रिय शूर धनुर्धारी, अचूक निशाने वाला और बड़े रथ वाला उत्पन्न हो।[7] क्षत्रिय वर्ण के लिए ग्रीष्म ऋतु में

---

1 ऐ0 ब्रा0 7.29·2

2 आ0 ध0 सू0 1.5.15.22

3 बाहू राजन्यः कृत ऋग्वेद 10.90. 12, यजु0 31.11

4 आ0 ध0 सू0 1.1.1.4 (पर की व्याख्या टिप्पाणी)

5 आ0 ध0 सू0 1.1.1.5

6 आ0 ध0 सू0 1.1.1.6

7(क) ऊँ आ ब्रह्मन्ब्राह्मणोब्रह्मवर्च्चसी जायतामराष्ट्रे राजन्नयः शूरऽइषव्योऽतिव्यधी महारथो जायतान्दोग्ध्री इत्यादि। यजु. 22/22

(ख) आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषोव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्, मा0 श0 ब्रा0 13.1.9.2

ग्यारहवें वर्ष उपनयन करने का विधान है। यदि किसी कारणवश ग्यारहवें वर्ष न हो सके तो बाइसवें वर्ष पूरा करने पर धर्म का उल्लंघन नहीं होता है।[1]

अभिवादन करते समय क्षत्रिय वक्ष के समानान्तर दक्षिण बाहु को फैलाकर अभिवादन करे।[2] अभिवादन और प्रत्याभिवादन में नाम के अन्तिम स्वर को प्लुत करके उच्चारण करने का विधान है।[3]

आचमन विषय में कहा गया है कि क्षत्रिय बैठकर कण्ठगत तक पहुँचने वाले जल से आचमन करें।[4] बौधायनधर्मसूत्रकार[5] के अनुसार ब्रह्म ने क्षत्रिय में बल का आधान किया। राज्यशक्ति की वृद्धि के लिए तथा प्राणियों की रक्षा के लिए शक्ति का आधान किया। अध्ययन, यज्ञ–कराना, दान–देना क्षत्रिय के विहित कर्म हैं। किन्तु अध्यापन न करना, यज्ञ न करना, दान-ग्रहण न करना व इनके अतिरिक्त दण्ड देना तथा युद्ध करना क्षत्रिय के अधिक कर्म कहे हैं।[6]

गौतम धर्मसूत्रकार भी उपर्युक्त मत की पुष्टि करते हुए उद्योग–धन्धों को आजीविका हेतु क्षत्रिय के कर्म रूप में स्वीकार करते हैं।[7] मार्कण्डेय इनको स्वीकार करते हुए पृथिवी पालन और शास्त्राभ्यास को जीविका का साधन मानते हैं।[8] गीता में शूरवीरता

---

1 आ0 ध0 सू0 1.1.1.19,27

2 आ0 ध0 सू0 1.2.5.16

3 आ0 ध0 सू0 1.2.5.17,मनु स्मृ0 2/125

4 आ0 ध0 सू0 1.5.16.2

5 क्षत्त्रे बलम् .....वृद्ध्यै,बौ ध0 सू0 1.10.18–3

6 आ0 ध0 सू0 2.5.10.7

7 गौ0 ध0 सू0 2.1.2, 7,10,16

8 दानमध्ययनं यज्ञाः क्षत्रियस्याप्ययत्रिधा धर्मप्रोक्तः क्षितेरक्षा शस्त्राजीवश्चजीविका।

मार्क0 पु0 25/5

आदि कर्मों के अतिरिक्त चतुरता और युद्ध से न भागना और स्वामीभाव क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।[1]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उल्लेख है कि युद्ध में क्षत्रिय उस प्रकार आचरण करे जैसा युद्ध के लिए निष्णात लोगों ने उपदेश दिया हो।[2] ऐतरेय ब्राह्मण[3] में कहा गया है कि जिस राष्ट्र की रक्षा के लिए क्षत्रिय कार्य करता था, वह राष्ट्र उन्नत तथा समृद्ध माना जाता था। महाभारत में उल्लेख हुआ है कि क्षत्रिय दूसरे कर्म करे या न करे किन्तु प्रजा की रक्षा करने से ही उसे पुरुषार्थ सिद्धि मिलती है। क्षत्रिय में इन्द्र बल की प्रधानता होने से वह 'ऐन्द्र' कहलाता है।[4]

क्षत्रियों को ऐसे लोगों का वध नहीं करना चाहिए जिन्होंने हथियार डाल दिये हो, जिन्होंने बिखरे हुए केशों के साथ हाथ जोड़कर दया की याचना की हो, अथवा जो डर कर युद्धक्षेत्र छोड़कर जा रहे हो। ऐसा विधान आर्यों ने बनाया है।[5]

ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त दूसरे वर्ण के व्यक्तियों को कर्म के अनुसार पुरोहित द्वारा बताये गये दण्ड स्वयं ही राजा के द्वारा देने का विधान किया गया है।[6] यदि अपराध अधिक हो तो अपराधी को मृत्यु दण्ड भी मिल सकता था।[7] यदि कोई क्षत्रिय का वध करे तो राजा अपराधी को उसकी शक्ति देखकर दण्ड दें या अपराधी राजा को एक हज़ार गाय और एक

---

1 शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। श्री भगव0 गी0 18/43

2 आ0 ध0 सू0 2.5.10.11

3 तद् यत्र ब्राह्मणः क्षत्रमवशमेति तद्राष्ट्रम् समृद्धं तद्वीरवदाहस्मिनः वीरो जायते। ऐ0 ब्रा0 8.9

4 परिनिष्ठितकार्यस्तु नृपतिः परपिालनात्।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादैन्द्रो राजन्य उच्यते।। महा०भा0 शा० प0 17/13

5 आ0 ध0 सू0 2.5.10.12

6 आ0 ध0 सू0 2.5.11.1

7 आ0 ध0 सू0 2.5.11.1

सांड पाप को दूर करने के लिए दें।[1] आपस्ताम्ब धर्मसूत्र में क्षत्रिय के विषय में इतना ही वर्णन प्राप्त होता है।

वैश्य वर्ण उसके धर्म एवं कर्त्तव्य

प्रजापति के जंघा भाग से वैश्य का प्रादुर्भाव माना गया है।[2] यजुर्वेद में भी वैश्य की उत्पत्ति ईश्वर के ऊरू भाग से मानी है।[3] आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार वैश्य का उल्लेख तृतीय स्थान पर अर्थात् क्षत्रिय वर्ण के पश्चात् हुआ है। यह वर्ण शूद्र वर्ण से श्रेष्ठ होता है।[4] जिस तरह शरीर का बोझ ऊरू अर्थात् जंघाओं पर होता है उसी प्रकार व्यापार आदि के द्वारा समाज का बोझ उठाने का कार्य वैश्यों का था।[5]

वैश्य की परिभाषा और लक्षण स्वरूप के विषय में भारद्वाज की जिज्ञासा का समाधान करते हुए महाभारत[6] में कहा गया है कि जो वेदों का सुचारू रूप से अध्ययन कर व्यापार करने की रुचि रखता है तथा पशुपालन करता है, कृषि कार्य द्वारा अन्न संग्रह कर, शुद्धता पवित्रतापूर्वक जीवन निर्वाह करता है तथा अपने द्वार पर आए हुए आश्रितों को शरण देता है, वही वैश्य है।

श्रीमद्भगवद् गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि कृषि करना, गोपालन, क्रय–विक्रय रूप सत्य व्यवहार, ब्याज लेना आदि वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।[7] यह वर्ण कर्म की वृद्धि के

---

1 आ0 ध0 सू0 1.9.24.1 बौ0 ध0 सू0 1.10.18., 20, 1.10. 19.1

2 ऋग्वेद 10/90/12

3 ऊरू तदस्य यद्वैश्यः। यजु0 31/11

4 आ0 ध0 सू0 1.1.1.5

5 ऋग्वेद, 4/26/1, 10/90/12, यजु0 38/14

6 वाणिज्या पशु रक्षा च कृष्यादानरतिः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः।। महा0 भा0 शा0. प0 189/6

7 कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम् । भगव0 गी0 18/44 पूर्वार्द्ध, मार्कण्डेय पृ025/6

लिए अध्ययन, यज्ञ करना, दान लेना, कृषि, व्यापार, पशुपालन आदि करने वाला था।[1] महर्षि दयानन्द ने कहा है कि "खेती, व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यमगुणों से वैश्य वर्ण का ज्ञान होता है।"[2]

इस वर्ण के लिए भी उपनयन, वेदाध्ययन, अग्नि का आधान विहित किया गया है। परन्तु दुष्ट कर्म न करने की विशेषता पर बल दिया गया है।[3] इस वर्ण की सेवा करने का फल ब्राह्मण वर्ण से तृतीय स्थान पर माना गया है।[4] वैश्य वर्ण की आचमन शुद्धि मुख तक पहुँचे जल से होती है।[5]

वैश्य वर्ण के लिए उपनयन की अवधि गर्भ से बाहरवें[6] वर्ष कही हैं, क्योंकि उपनीत बालक ही गुरु से विद्याग्रहण कर सकता था तथा विद्या से होने वाला जन्म श्रेष्ठ होता था व स्वर्ग सुख एवं निःश्रेयस् को देने वाला होता था।[7] उपनयन के लिए वैश्यों का शरद् ऋतु का समय आपस्तम्ब ने बतलाया है।[8] वैश्य का उपनयन जगती मन्त्रों से करना चाहिए।[9] यदि किसी कारण वश उपनयन की अवधि बीत गई हो तो चौबीसवें वर्ष पूरा होने से पूर्व वैश्य का उपनयन संस्कार किया जाता है[10] और यदि चौबीसवां वर्ष भी बीत गया हो तो प्रायश्चित्तपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके उपनयन करें।[11]

---

1 आ० ध० सू० 2.5.10.8 मनु स्मृ० 1/90

2 वेदार्थ प्रकाश, पृ० 281

3 आ० ध० सू० 1.1.1.6

4 अ० ध० सू० 1.1.1.8

5 गौ० ध० सू० 1.5.5.18

6 (क) आ० ध० सू० 1.1.1.9 (ख) बौ० ध० सू० 1.2.3.10

7 आ० ध० सू० 1.1.1.16, 17

8 (क) आ० ध० सू० 1.1.1.19 (ख) बौ० ध० सू० 1.2.3.11

9 बौ० ध० सू० 1.2.3.12

10 आ० ध० सू० 1.1.1.27

11 अथोपनयनम् आ० ध० सू० 1.1.1.28, 29

तत्पश्चात् वैश्य प्रायश्चित्तपूर्वक विद्या अध्ययन करें। उसकी मेखला ऊन का धागा अथवा बैल को जुए से जोड़ने वाली रस्सी हो सकती है। उसका दण्ड बदर या उदुम्बर का, वस्त्र हल्दी रंग का चर्म बकरे का ओढ़ने का वस्त्र भेड़ के ऊन का बना होना चाहिए।[1]

वैश्य अभिवादन तथा प्रत्याविदान में नाम के अन्तिम स्वर को लुप्त करके उच्चारण करे।[2] वैश्य के धर्म विहित कर्म वे ही होते हैं जो क्षत्रिय के केवल वैश्य के लिए दण्ड और युद्ध का कर्म वर्जित होता है तथा खेती, पशुपालन तथा व्यापार का कर्म अतिरिक्त होता है।[3] इन्द्रियों की दुर्बलता के कारण अपने कर्म से भ्रष्ट हो जाने वाले वैश्य के लिए आचार्य आदि उपदेशक उनके कर्मानुसार तथा शास्त्र के विधान के आधार पर प्रायश्चित्त का निर्देश करें।[4] यदि ये उपदेशक का पालन न करे तो इन को राजा के समीप भेजा जाना चाहिए।[5]

यदि अपराधी धर्म के मार्ग पर न आवे तो उनकी शक्ति के अनुसार उनके लिए उपवास आदि नियमों का विधान किया जाये, किन्तु वध अपेक्षित नहीं है।[6] यदि इस पर भी वह न सुधरे तो राजा कर्म के अनुसार पुरोहित द्वारा बताये गए दण्ड को स्वयं ही दे, अपराध के अनुसार उसे मृत्यु का दण्ड भी दिया जा सकता है।[7]

वैश्य वर्ण के लोगों के लिए विधान है कि मार्ग में चलते हुए अपने से श्रेष्ठ वर्ण के लोगों के लिए मार्ग छोड़ दें। मूर्ख, पतित, शराबी, पागल के लिए अपनी कुशलता का ध्यान रखकर उसके लिए भी मार्ग छोड़ देना चाहिए।[8] अधर्म का आचरण करने पर श्रेष्ठ वर्ण के

---

1 आ0 ध0 सू0 1.1.2.-35, 37, 38, वही, 1.1.3.2,6, 8

2 आ0 ध0 सू0 1.2.5.17

3 आ0 ध0 सू0 2.5.10.8

4 आ0 ध0 सू0 2.5.10.13

5 आ0 ध0 सू0 2.5.10. 14

6 आ0 ध0 सू0 2.5.10.17

7 आ0 ध0 सू0 2.5.11.1

8 आ0 ध0 सू0 2.5.11,8.9

व्यक्ति अगले जन्म में उत्तरोत्तर अपने से हीन वर्ण में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उनकी जाति का परिवर्तन होता है।[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि अपने धर्म का सतत् पालन करने पर निम्न वर्ण के व्यक्ति उत्तरोत्तर अगले जन्म में अपने वर्ण की अपेक्षा श्रेष्ठ वर्ण में जन्म प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उनकी जाति का परिवर्तन होता है।[2] गौतम धूर्मसूत्रकार ने भी इसी बात को स्वीकार किया है।[3]

वैश्य के लिए गान्धर्व विवाह, जिसमें वर कन्या परस्पर प्रेम से संयोग करते हैं का विधान है।[4] वैश्यों को स्नान करने की विधि वही है जो अन्य वर्णों के लिए भी कही गयी है।[5] वैदिक वर्ण व्यवस्था में वैश्यों को भी द्विजों के अन्तर्गत माना गया है। माता से जन्म लेने के उपरान्त उपनयन संस्कार द्वारा दूसरी बार पुनः सांस्कृतिक जन्म लेने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों द्विज कहे गये हैं।[6]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में बतलाया गया है कि द्यूत खेलने वाले आर्यों में वैश्य की भी गणना होती है परन्तु उसे आचरण से पवित्र तथा सत्यवादी होना चाहिए।[7] इस वर्ण की स्त्रियाँ कर से मुक्त होती हैं।[8] वैश्य वर्ण के मनुष्य को भी अपराध के लिए अनेक प्रकार के दण्ड का विधान है।

यदि वह शूद्रा स्त्रीगमन[9] आदि करे या किसी उच्च वर्ण की निन्दा आदि करे तो वह दण्डित किया जाता था। वैश्य का यदि कोई वध करे तो उसे सौ गाय दान करना पड़ता

---

1 आ0 ध0 सू0 2.5.11.11, गौ0 ध0 सू0 2.2.29,30

2 धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ " आ0 ध0 सू0 2.5.11.10

3 गौ0 ध0 सू0 2.2.29

4 आ0 ध0 सू0 2.5.11.20,बौ0 ध0 सू0 1.20.11.13

5 आ0 ध0 सू0 2.9.22.14

6 याज्ञ0 स्मृ0 का समी0 अ0, पृ0 124

7 आ0 ध0 सू0 2.10. 25.13

8 वही 2.10. 26.11

9 'नाश्य आर्यश्शूद्रायाम्' आ0 ध0 सू0 2.10. 27.8

था।[1] वैश्य निज धर्म से जीविका उत्पन्न करने में असमर्थ हो तो निषिद्ध कर्मों को छोडकर शूद्रवृत्ति से जीविका करे परन्तु समर्थ होने पर शूद्रवृत्ति छोड़ देना चाहिए।[2]

शूद्र वर्ण का धर्म एवं कर्त्तव्य

धर्मसूत्रों में उल्लिखित वर्ण व्यवस्था विषयक सामग्री के अनुशीलन के आधार पर शूद्र का स्थान वर्णक्रम में चतुर्थ गिनाया गया है।[3] प्रजापति के पैरों से शूद्र की उत्पत्ति मानी है,[4] अर्थात् पैरों का कार्य शरीर के भार को धारण करना है अतः जो वर्ण सेवा करने वाला था उसने समाज रूपी शरीर की सेवा का कार्यभार संभाला जिससे वे शूद्र कहलाये। वर्णों की श्रेष्ठता में यह चतुर्थ स्थान पर जन्म से ही माना है।[5]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पूर्ववर्ती तीनों वर्णों की सेवा करना शुद्र का धर्म कहा है।[6] इन सभी वर्णों में ब्राह्मण की सेवा अधिक पुण्य देने वाली कही गयी है।[7] शूद्र को इन तीनों उच्च वर्णों की सेवा करने से उत्तरोत्तर अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है।[8] वैदिक धर्मकाल में धर्मसूत्रों से पूर्व शूद्र को सेवावृत्ति में नियुक्त किया जाता था।[9]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में अन्य धर्मसूत्रों की भाँति शूद्र के लिए उपनयन का विधान नहीं किया गया है। अर्थात् शूद्र और और दुष्ट कर्म करने वालों के लिए वेदाध्ययन उपनयन

1'शतं वैश्ये' आ0 ध0 सू0 1.9.24.2

2 मनुस्मृ0 10/198

3 आ0 ध0 सू0 1.1.1.4

4पदभ्या ँशूद्रो अजायत।। ऋग्वेद 10/90/12, 4/26/1, यजु0 31/11

5तेषां पूर्वः पूर्वो जन्मतश्श्रेयान्' आ0 ध0 सू0 1.1.1.5 गौ0 ध0 सू0 2.1.51

6आ0 ध0 सू0 1.1.1.7, महा भा0 शान्ति प0 17/17, मनु स्मृ1/91

7 आ0 ध0 सू0 1.1.1.8

8 आ0 ध0 सू0 वही, गौ0 ध0 सू0 2.1.64 मनु स्मृ0 1/91

9 गौ0 ध0 सू0 भू पृ0 30

अग्नि का आधान वर्जित है।[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्र और पतित व्यक्ति को श्मशान कहा गया है। उनके सामने वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए।[2]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि अपने से हीन व्यक्ति भी विद्या और अवस्था में बढ़कर हो तो उसके प्रति आदर और सम्मान व्यक्त करने का नियम है।[3] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्र की स्थिति पर अधिक उल्लेख नहीं है। गौतम धर्मसूत्र के अनुशीलन से यह विदित होता है कि शूद्र की स्थिति अधिक खराब थी।[4] गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है कि वह द्विजातियों का जूठा भोजन करें व उन्हीं के लिए धन संचय करें।[5] बौधायन[6] धर्मसूत्र में इस वर्ण के विषय में विस्तृत उल्लेख का प्रतिपादन नहीं मिलता, इस सूत्रकार के मतानुसार आपने से उच्च वर्णों की सेवा करने का कार्य इस वर्ण के लोगों को कहा है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्र वर्ण को वेदाध्ययन वर्जित करते हुए कहा है कि यदि शूद्रा स्त्री व शूद्र एक दूसरे को देख रहे हो तो अध्ययन न करे।[7] कुछ आचार्यों के मत का उल्लेख है कि शूद्र या पतित यदि अध्ययनार्थी के मकान में रह रहा हो तो भी उनके समक्ष अध्ययन न करें।[8]

---

1 आ0 ध0 सू0 1.1.1.6

2श्मशानवच्छूद्रपतितौ। आ0 ध0 स0 1.3.9.9

3(क) पूजा वर्णज्यायसां कार्यावृद्धतराणां च'। आ0 ध0 सू0 1.4.13.2,3

(ख) पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च।

यत्रस्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीगतः।। मनु स्मृ00 2/137

4 गौ0 ध0 सू0 2.1–59–65

5 उच्छिष्टाशनम् गौ0 ध0 सू0 2.1.61,65

6 शूद्रेषु पूर्वेषां परिचर्या। बौ0 ध0 सू0, 1.10.18.5, गौ0 ध0 सू0 2.1.57

7 शूद्रायां तु प्रेक्षणप्रतिप्रेक्षणयोरेवाऽनध्यायः। आ0 ध0 सू0 1.3.9.11

8 समानागार इत्येके, आ0 ध0 सू0 1.3.9.10, याज्ञ0 स्मृ0 1/148

आर्यों के सम्बन्ध में इस सूत्र में कहा गया है कि अयोग्य, निम्न वर्ण के पुरुषों और अभिशप्तों को छोड़कर भिक्षा ग्रहण करना चाहिए अर्थात् निम्न वर्ण से भिक्षा ग्रहण न करे।[1] शूद्र से कुशल क्षेम पूछने पर उससे आरोग्य के विषय में प्रश्न करे।[2] जिस व्यक्ति पर आक्रोश नहीं करना चाहिए यदि उसके साथ आक्रोश करे या असत्य भाषण करे तो तीन दिन तक उपवास करना चाहिए। उसे तीन दिन तक बिना दूध, मसाले और नमक के भोजन ग्रहण करने का विधान है।[3]

शूद्र भी आर्यजन की देख–रेख में रसोइयाँ का कार्य कर सकता है।[4] आपत्तिकाल के समय शूद्र का अन्न भी भोज्य होता है।[5] यह भोजन सोने और अग्नि से स्पर्श करा कर करना चाहिए और उस भोजन में विशेष रुचि नहीं लेना चाहिए और अपनी यथोचित जीवन–वृत्ति प्राप्त कर लेने पर शूद्र का अन्न खाना बन्द कर देना चाहिए।[6] मनु ने भी इस पर सहिष्णुता व्यक्त की है।[7]

गौतमादि धर्मसूत्रकारों ने यही स्वीकार किया है कि शूद्र को कभी भी उच्च वर्ण के समकक्ष होने का साहस नहीं करना चाहिए, उनके समान मार्ग पर न चले और उनसे बात भी न करें। इसका उल्लंघन होने पर कठोर दण्ड मिलने का विधान किया गया है।[8] शूद्र पवित्र अग्नियां नहीं जला सकते थे और न वैदिक यज्ञ ही कर सकते थे।[9] शूद्र के विषय में

---

1 आ0 ध0 सू0 1.1.3.25

2 आरोग्यं शूद्रम्, आ0 ध0 सू0 1.4.14.26

3 (क) अनाक्रोश्यमाक्रुश्याऽनृतं . . . . भोजनम्। अ0 ध0 सू0 1.9.26.3

(ख) शूद्रस्य सप्तरात्रमभोजनम्, आ0 ध0 सू0 1.9.26.4

4 आर्याधिष्ठाता वा शूद्रासत्संस्कर्तारः स्युः। आ0 ध0 सू0 2.2.3.4

5 तस्याऽपिधर्मोपनतस्य, । आ0 ध0 सू0, 1.6.18.14

6 सुवर्णं दत्वा पशुं वा भुञ्जीत नाऽत्यन्तमन्ववस्येद् वृत्तिं प्राप्य विरमेत्, आ0 ध0 सू0 1.6.18.15

7 मनु स्मृ0 4/211

8 गौ0 ध0 सू0 भूमि0, पृ0 37

9 याज्ञ0 स्मृ0 1/48

गौतम ने कहा है कि वैश्वदेव के लिए 'नमो नमः' कहकर नमस्कार ही करे यजन न करे।[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि यदि कृष्ण-वर्ण के शूद्र की एक दिन और एक रात में ब्राह्मण सेवा करता है तो उस दोष को वह प्रति चौथे भोजनकाल पर स्नान करके तीन वर्ष में दूर कर देता है।[2]

शूद्र शब्द को रथकार जाति के अर्थ में प्रयुक्त माना है, ब्राह्मण द्वारा विवाहिता शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र निषाद् या पारशव कहलाता है।[3] प्रायश्चित्त और अपराध के प्रसंग में भी शूद्र के प्रति कठोरता का नियम है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णों की स्थिति पहले ही पूरी तरह निर्धारित हो चुकी थी।

अतः इस धर्मसूत्र में शूद्र के विषय में गौतम धर्मसूत्र की तरह अधिक वर्णन प्राप्त नहीं होता।

---

1 गौ0 ध0 सू0 2.1–66

2 आ0 ध0 सू0 1.9.9.11

3 विप्रान्मूधावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम्।

अम्बष्ठ शूद्रायां निषादो जातः पारशवोऽपि वा।। या0 स्मृ0, 1/48